## नीरव निर्झर

*(सामायिक पाठ)*

*(वीर छन्द)*

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥ १ ॥
यह अनंत बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥ २ ॥
सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, कांच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥ ३ ॥
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु ! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥ ४ ॥
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥ ५ ॥
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥ ६ ॥
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु ! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शांत ॥ ७ ॥
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्त्तन करके, शीलाचरण विलीन किया ॥ ८ ॥
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया ॥ ९ ॥
मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया ॥ १० ॥



निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल-जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥ ११ ॥
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनंत का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥ १२ ॥
दर्शन-ज्ञानस्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥ १३ ॥
जो भवदुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यान-गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥ १४ ॥
मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥ १५ ॥
निखिल-विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतींद्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥ १६ ॥
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥ १७ ॥
कर्म-कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥ १८ ॥
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर-प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥ १९ ॥
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अंत से रहित शांत शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥ २० ॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को; तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषादि चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव ॥ २१ ॥
तृण चौकी शिल शैल-शिखर नहिं, आत्म-समाधी के आसन।
संस्तर पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन ॥ २२ ॥

इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी है विश्व-वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥ २३ ॥
बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥ २४ ॥
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूंठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥ २५ ॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥ २६ ॥
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम-समूह रहें कैसे ॥ २७ ॥
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥ २८ ॥
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर फिर लीन उसी में हो ॥ २९ ॥
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥ ३० ॥
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी धी ॥ ३१ ॥
निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥ ३२ ॥

*** अयोग्य कार्य हुए हों तो लज्जित होकर उनको भविष्य में नहीं करने की प्रतिज्ञा करना।**



## अमूल्य तत्व विचार

*(हरिगीतिका)*

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे ! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला ॥ १ ॥
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है ॥ २ ॥
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या ? वृद्धि नय पर तोलिये ॥ ३ ॥
संसार का बढ़ना अरे ! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है ॥ ४ ॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो ॥ ५ ॥
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे ! पश्चात् जिसके दुख भरा ॥ ६ ॥
मैं कौन हूँ आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?
सम्बन्ध दुखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥ ७ ॥
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञानके, सिद्धान्त का रस पीजिये ॥ ८ ॥
किसका वचन उस तत्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥ ९ ॥
तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लिख लीजिये ॥ १० ॥